क्या औरत ही औरत की दुश्मन है?

कमला भसीन

जब हम औरतों की कठिनाइयों और उनके साथ होने वाली ज़्यादतियों की बात करते हैं तो अक्सर कई स्त्री या पुरुष कह उठते हैं "आप पुरुषों को ही क्यों दोष देती हैं, औरतें भी तो औरतों की दुश्मन होती हैं। घरों में मां ही तो बेटे और बेटी में भेदभाव करती है। सास-ननद ही तो बहू को तंग करती हैं। औरतें कहां एक दूसरे की मदद करती हैं।"

औरतें भी एक दूसरे के साथ ज़्यादती करती हैं यह सच है इसे नकारा नहीं जा सकता, लेकिन इस बात पर गहराई से सोचना ज़रूरी है। यह समझना ज़रूरी है कि औरतें एक दूसरे के साथ दुश्मनी का व्यवहार क्यों करती हैं। मांये क्यों बेटियों पर बंधन लगाती हैं? उन्हें क्यों आगे बढ़ने के मौके नहीं देतीं।

हमारे समाज में पुरुष सूर्य के समान है और स्त्रियां उपग्रहों के समान। सूर्य की अपनी चमक होती है, लेकिन उपग्रह अपनी चमक सूर्य से पाते हैं। ठीक इसी प्रकार सास-बहू, ननद सभी 'पुरुष' से चमक, पद, इज्ज़त पाने की कोशिश करे हैं।

इस विषय पर खूब बहस करके, सोचकर, हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि बात को ठीक से समझने के लिए हमें पूरे समाज को समझना होगा। अपने सामाजिक ढांचे या व्यवस्था को समझना होगा। लोगों के सोचने के ढंग को समझना होगा। मात्र कुछ पुरुषों और स्त्रियों को दोष देने से बात नहीं बनेगी।

पितृसत्ता क्या है?

हमारा सामाजिक ढांचा पुरुष-प्रधान या पितृ सत्तात्मक है। पितृसत्ता का सीधा-सादा मतलब है पिता या पुरुष का परिवार पर राज या सत्ता। पितृसत्ता एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसके तहत पिता या कोई पुरुष परिवार के सभी सदस्यों, संपत्ति व आर्थिक साधनों पर मुखिया के रूप में नियंत्रण रखता है। वही मुख्य माना जाता है, उसी के नाम से परिवार जाना जाता है। उसके बाद उसकी सत्ता व अधिकार उसके पुत्र या किसी अन्य पुरुष के हाथ में चले जाते हैं। यानी खानदान या वंश पुरुषों से चलता है, जायदाद पर पुरुषों या पुत्रों का हक़ होता है। इसी पितृसत्ता से जुड़ी हुई ये धारणाएं हैं कि पुरुष स्त्री से ऊंचा है, वह भगवान का रूप है, वह स्त्री का पति, स्वामी या मालिक है; स्त्रियों को पुरुषों की संपत्ति का ही एक हिस्सा माना जाता है। यहां तक कि स्त्री के शरीर पर भी पुरुषों का हक़ माना जाता है।

पुरुष तो इस विचारधारा को मानते ही हैं, बहुत

सारी स्त्रियां भी इसी तरह सोचती हैं। आख़िर औरतें भी तो इसी ढांचे का एक हिस्सा हैं। हज़ारों सालों से औरतों ने यही सब देखा और सुना है।

धर्म भी यही सब सिखाते आ रहे हैं। सभी धर्म पुरुषों ने बनाए हैं। पुरुष ही उनकी व्याख्या करते हैं, वे ही चलाते हैं धर्मों को। सभी धर्म पुरुष को अधिक महत्व देते हैं। वे पुरुष को परिवार का मुखिया मानते हैं, पत्नी को पति या स्वामी या मालिक के अधीन मानते हैं।

धर्मों का प्रभाव हमारी क़ानून व्यवस्था पर भी है। इसीलिए हमारे क़ानून भी पुरुष-प्रधान हैं।

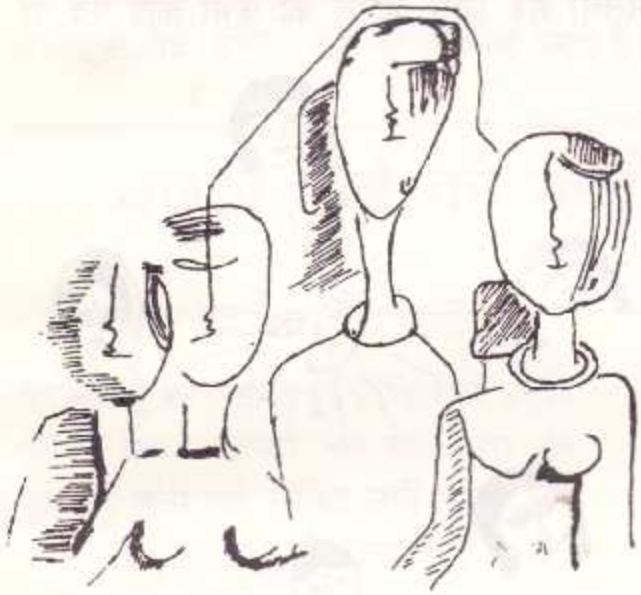

वे पुरुषों को अधिक महत्व और हक़ देते हैं। शिक्षा में, अख़बारों, पत्रिकाओं, किताबों, रेडिओ, टेलीविज़न सबमें पुरुषों का बोलबाला है। राजनीति, व्यवसाय, संपत्ति सब पुरुषों के हाथ में है यानी चारों ओर से यही सुनाई देता है कि पुरुष श्रेष्ठ है। औरतों ने यही सब देखा और सुना है। इसीलिए वे भी इसे ही सच मान लेती हैं। यही बातें फिर वे अपने बच्चों को सिखाती हैं-बेटे को आज़ादी बेटी को बंधन, बेटे को अधिकार बेटी को कर्तव्य, बेटे को रौब जमाना बेटी को दबाना। औरतों द्वारा पुरुषसत्ता स्वीकारने के और भी कई कारण हैं। औरतों को पढ़ने-लिखने, स्वतंत्र रूप से सोचने के अवसर कम दिए जाते हैं। उन्हें सीमित दायरों में रखा जाता है। इसीलिए न वे नया देख सकती हैं, न सोच सकती हैं। इसी वजह से वे उसी पुरानी लकीर पर चलती हैं। यदि औरतों के दिमाग में पितृसत्ता के बारे में सवाल उठते भी हैं तो वे खामोश ही रहना पसंद करती हैं। कारण, उनके अंदर हिम्मत नहीं होती पुरुषों से सवाल-जवाब करने की। वे पूरी तरह से पुरुषों पर या तो सचमुच में निर्भर होती हैं या वे यह मानती हैं कि वे निर्भर हैं। ज़्यादातर औरतें खुद इतना नहीं कमातीं कि वे अपना और अपने बच्चों का पेट पाल सकें, उन्हें रहने को घर दे सकें। संपत्ति उनके नाम से नहीं होती। इसीलिए वे पितृसत्ता को और बढ़ाती ही रहती हैं। चूंकि औरतें इसी समाज का हिस्सा हैं इसीलिए एक मां ही अपनी बेटी को बेटे से कम परोसती है, कम शिक्षा देती है, कम आज़ादी देती है। कई सासें बहुओं की हत्या करने की साजिश में भागीदार होती हैं। मां-बेटी के आपसी तनाव भी अक्सर बहुत जटिल व पीड़ादायक होते हैं।

स्त्रियों का योगदान क्यों?

पितृसत्ता की जड़ें इसीलिए मज़बूत हैं, क्योंकि इसे चलाने में इससे शोषित स्त्रियां भी पूरा योगदान देती हैं। पर ऐसा क्यों है? शायद इसलिए कि औरतें बाध्य हैं, उन्हें कोई और रास्ता दिखाई नहीं देता, वे ये जानती ही नहीं कि जीने का कोई और

रास्ता भी हो सकता है। एक मां नौ महीने पेट में बच्चे को पालने के बाद यह सुनकर कि बेटी हुई है, सुबक पड़ती है। प्रसव के दर्द से समाज के तानों का डर कहीं अधिक होता है। दोष तो व्यवस्था का है। हर मां जानती है कि वर्तमान व्यवस्था में बेटी का होना क्या मतलब रखता है। यह भी देखने में आता है कि पिता प्रत्यक्ष रूप से बेटी पर बंधन नहीं लगाते। वे सारे कायदे-क़ानून मां के जरिए लागू करवाते हैं। खुद भले बने रहते हैं। हर मां जो एक औरत है इस समाज में औरत होने की पीड़ा को खूब जानती है। इसीलिए अपनी बेटी को सुरक्षित रखने के लिए खुद दारोगा बन जाती है। मां को इस बात का भय हमेशा बना रहता है कि कहीं बेटी पर जुल्म न हो, समाज उसे कहीं पवित्रता की कसौटी पर खोटा न करार दे, कोई यह कह दे कि मां ने कुछ सिखाया ही नहीं। सिखाने की सारी ज़िम्मेदारी अक्सर मां अकेले ही ढोती है। नैतिकता के सारे संदेश उसे ही बच्चों तक पहुंचाने होते हैं और चूंकि प्रचलित नैतिकता पुरुष सत्तात्मक है, वे इसे ही थोपती रहती हैं।

परन्तु, कई बार मां के दिल को टटोलने पर यह भी देखा गया है कि उसका मन समाज की लगाई आग के धुएं की घुटन से भर गया है। वह कई बार जब खुल कर बोलने की हिम्मत करती है तो कहती है, "अगर मैं पढ़ी लिखी होती, अपने पैरों पर खड़े होने लायक होती तो इतना कभी न सहती।" बहुत सी मांओं का यह भी अरमान होता है कि जो वे नहीं कर पाईं उनकी बेटियां करें, लेकिन उन्हें अक्सर इतनी छूट नहीं होती, उनमें इतनी आर्थिक शक्ति नहीं होती कि वे अपनी बेटियों को सशक्त व स्वावलंबी बना सकें। वास्तव में औरतें इस ढांचे में पूरी तरह से फंसी हुई हैं।

जहां तक सास और बहू के रिश्ते का सवाल है, एक बस्ती की ग़रीब औरत ने इसे बहुत सरल तरीके से हमें समझाया। वह बोली, "जैसे दो ग़रीब देशों की लड़ाई में हमेशा किसी अमीर देश का हाथ होता है वैसे ही दो औरतों की लड़ाई में अक्सर पुरुष का हाथ होता है।"

सास-बहू के रिश्ते को भी गहराई से समझने की ज़रूरत है। एक सास के लिए बहू का मतलब होता है अपने बेटे का बंटवारा। और फिर सास बनकर किसी और पर हुक्म चलाने का भी मौक़ा मिलता है। जिस औरत को कभी कोई पद या

सत्ता न मिली हो उसके लिए इस सत्ता का ग़लत इस्तेमाल करने की पूरी संभावनाएं रहती हैं। आखिर वह भी इंसान है और उसमें भी वही संस्कार हैं और वही कमियां हैं जो सब में होती हैं।

वह भी पितृसत्ता की विचारधारा की शिकार है। वह भी बेटे की मां होने को बड़ी बात मानती है,

बहू को अपने बेटे के अधीन मानती है। उसके मन में यह भी खतरा होता है कि बेटा पूरी तरह से बहू का न हो जाए। दूसरी तरफ़ बहू भी अपना घर अपनी मर्ज़ी से चलाना चाहती है। उसने बचपन से यही सपने देखे थे कि शादी के बाद वह अपनी मर्ज़ी का खा-पहन सकेगी, अपनी मर्ज़ी से उठ-बैठ सकेगी। इन सब कारणों से सास-बहू में तनाव रहता है। यह तनाव पितृसत्तात्मक ढांचे की ही देन है।

हमारे समाज में पुरुष सूर्य के समान है और स्त्रियां उपग्रहों के समान। सूर्य की अपनी चमक होती है, लेकिन उपग्रह अपनी चमक सूर्य से पाते हैं। ठीक इसी प्रकार सास-बहू, ननद सभी 'पुरुष' से चमक, पद, इज्ज़त पाने की कोशिश करते हैं। बेटा अगर सास के कब्जे में है तो सास की इज्ज़त होगी, उसकी देखरेख होगी, वरना नहीं। दूसरी तरफ पति अगर पत्नी के नज़दीक है तो पत्नी की स्थिति बेहतर होगी। एक ही पुरुष पर निर्भर औरतें-चाहे वे सास-बहू हों, सत्ता की लड़ाई में एक दूसरे की दुश्मन बन जाती हैं। अगर स्त्रियों की अपनी चमक हो, अगर उन्हें पद व पेट के लिए पुरुष पर निर्भर न रहना पड़े तो इस प्रकार की रस्साकशी न हो। एक सशक्त, आत्मनिर्भर, खुश औरत शायद ही किसी औरत से दुश्मनी करे। इसीलिए हमारी लड़ाई पुरुषों से नहीं है, बल्कि पुरुष सत्ता से है व उन सब स्त्रियों और पुरुषों से है जो पुरुष सत्ता को बनाए रखना चाहते हैं। □